Journal of Advances in Developmental Research (IJAIDR)

E-ISSN: 0976-4844 ● Website: www.ijaidr.com ● Email: editor@ijaidr.com

भक्ति कालीन काव्य में स्त्री छवि: कबीर और मीरा का तुलनात्मक अध्ययन

गोरे लाल मीना

सह आचार्य, हिन्दी
राजकीय महाविद्यालय, करौली

सारांश (Abstract)

भक्ति काल भारतीय साहित्य का वह महत्वपूर्ण युग है जिसमें सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक चेतना का व्यापक प्रसार हुआ। इस काल के कवियों ने ईश्वर-भक्ति के माध्यम से मानव-मूल्यों, समानता और आत्मिक स्वतंत्रता का उद्घोष किया। भक्ति काव्य में स्त्री की छवि केवल सामाजिक इकाई के रूप में नहीं, बल्कि आध्यात्मिक साधिका, प्रेमिका, भक्त और विद्रोही चेतना के प्रतीक के रूप में उभरती है। प्रस्तुत शोध पत्र में निर्गुण भक्ति परंपरा के प्रमुख संत कबीर और सगुण भक्ति परंपरा की प्रतिनिधि कवयित्री मीरा बाई के काव्य में स्त्री छवि का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि जहाँ कबीर के काव्य में स्त्री छवि प्रतीकात्मक, सामाजिक आलोचना और आध्यात्मिक चेतना से जुड़ी हुई है, वहीं मीरा के काव्य में स्त्री स्वयं अपनी अनुभूति, प्रेम और भक्ति के माध्यम से आत्म-अभिव्यक्ति करती है। इस प्रकार दोनों कवियों के काव्य में स्त्री छवि भक्ति आंदोलन की व्यापक मानवीय दृष्टि को उजागर करती है।

मुख्य शब्द: भक्ति काल, स्त्री छवि, कबीर, मीरा, निर्गुण भक्ति, सगुण भक्ति

प्रस्तावना

भक्ति कालीन साहित्य भारतीय समाज में व्याप्त रूढ़ियों, जातिगत भेदभाव और लैंगिक असमानताओं के विरुद्ध एक सशक्त वैचारिक एवं सांस्कृतिक आंदोलन के रूप में उभरा। यह वह कालखंड था जब धार्मिक आडंबर, कर्मकांड और सामाजिक विषमताएँ अपने चरम पर थीं तथा सामान्य जन, विशेषकर स्त्रियाँ, सामाजिक और आध्यात्मिक अधिकारों से वंचित थीं। ऐसे समय में भक्ति आंदोलन ने ईश्वर और मानव के बीच प्रत्यक्ष, सरल और भावनात्मक संबंध की स्थापना की, जिससे समाज के हाशिए पर खड़े वर्गों को भी आत्मिक गरिमा और अभिव्यक्ति का अवसर प्राप्त हुआ।

भक्ति काव्य में ईश्वर-भक्ति को केवल धार्मिक अनुष्ठान न मानकर सामाजिक मुक्ति और आत्मिक स्वतंत्रता का साधन स्वीकार किया गया। इस दृष्टि से भक्ति आंदोलन ने स्त्री और पुरुष दोनों को समान आध्यात्मिक अधिकार प्रदान किए। मध्यकालीन भारतीय समाज में जहाँ स्त्री की भूमिका घरेलू दायरे तक सीमित थी और उसे आज्ञाकारी, सहनशील तथा परनिर्भर माना जाता था, वहीं भक्ति काव्य में स्त्री को ईश्वर-प्राप्ति की स्वतंत्र साधिका, प्रेम की संवाहिका और आत्मबोध की प्रतीक के रूप में चित्रित किया गया। स्त्री यहाँ केवल भोग्या या सामाजिक इकाई नहीं, बल्कि चेतन, संवेदनशील और आध्यात्मिक सत्ता के रूप में उभरती है।

भक्ति काल के प्रमुख कवियों ने स्त्री छवि को नए अर्थ और आयाम प्रदान किए। निर्गुण भक्ति परंपरा के संत कबीर ने अपने काव्य में प्रतीकों और रूपकों के माध्यम से स्त्री को आत्मा, माया, साधिका और सामाजिक यथार्थ की आलोचना के संदर्भ में प्रस्तुत किया। वहीं सगुण भक्ति परंपरा की प्रतिनिधि कवयित्री मीरा बाई ने स्वयं एक स्त्री होते हुए अपने व्यक्तिगत अनुभवों, प्रेम, पीड़ा

और विद्रोह को काव्य में ढालकर स्त्री चेतना को प्रत्यक्ष स्वर प्रदान किया। मीरा का काव्य स्त्री की आत्मानुभूति, स्वतंत्र निर्णय और सामाजिक बंधनों से संघर्ष की सशक्त अभिव्यक्ति है।

इस प्रकार भक्ति कालीन काव्य में स्त्री छवि केवल साहित्यिक विषय न होकर उस युग की सामाजिक संरचना, मूल्यबोध और परिवर्तनशील चेतना को प्रतिबिंबित करती है। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य भक्ति कालीन काव्य में स्त्री छवि का गहन विश्लेषण करते हुए कबीर और मीरा के काव्य-दृष्टिकोण की तुलनात्मक समीक्षा करना है, ताकि यह स्पष्ट किया जा सके कि दोनों कवियों ने अपने-अपने वैचारिक और भक्ति-संप्रदायिक संदर्भों में स्त्री को किस प्रकार देखा, समझा और अभिव्यक्त किया। यह अध्ययन भक्ति साहित्य में निहित स्त्री चेतना को समझने की दिशा में एक सार्थक प्रयास है।

भक्ति काल का संक्षिप्त परिचय

भक्ति काल हिंदी साहित्य का वह महत्वपूर्ण चरण है जिसमें धार्मिक भावना के साथ-साथ सामाजिक चेतना का भी व्यापक विकास हुआ। यह काल लगभग 14वीं शताब्दी से 17वीं शताब्दी तक माना जाता है। इस युग में भारतीय समाज अनेक प्रकार की सामाजिक, धार्मिक और नैतिक जटिलताओं से गुजर रहा था। जाति-प्रथा, छुआछूत, कर्मकांड, बाह्य आडंबर और लैंगिक असमानता जैसी समस्याएँ समाज की जड़ों में गहराई तक समाई हुई थीं। ऐसे समय में भक्ति आंदोलन ने व्यक्ति को ईश्वर से सीधे जुड़ने का मार्ग दिखाया और सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध एक मानवीय दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।

भक्ति काल को सामान्यतः निर्गुण और सगुण भक्ति परंपराओं में विभाजित किया जाता है। निर्गुण भक्ति परंपरा में ईश्वर को निराकार, निर्गुण और निरपेक्ष माना गया। इस परंपरा में ज्ञान और भक्ति का समन्वय दिखाई देता है। संत कबीर, रैदास और गुरु नानक जैसे संतों ने निर्गुण भक्ति के माध्यम से कर्मकांड, पाखंड और सामाजिक भेदभाव का विरोध किया। कबीर ने स्पष्ट रूप से कहा कि ईश्वर किसी विशेष रूप, स्थान या जाति में सीमित नहीं है, बल्कि वह प्रत्येक जीव के भीतर विद्यमान है। इस दृष्टि ने स्त्री और पुरुष के बीच आध्यात्मिक समानता को स्थापित किया। दूसरी ओर, सगुण भक्ति परंपरा में ईश्वर को साकार रूप में स्वीकार किया गया। इस परंपरा में राम और कृष्ण भक्ति प्रमुख रही। सगुण भक्ति ने ईश्वर के प्रति प्रेम, समर्पण और भावनात्मक तादात्म्य पर बल दिया। इसी परंपरा में मीरा बाई जैसी महान कवयित्री का उदय हुआ, जिन्होंने कृष्ण को अपना सर्वस्व मानकर भक्ति को जीवन का केंद्र बना लिया। मीरा की भक्ति व्यक्तिगत, भावनात्मक और विद्रोही स्वर से युक्त है, जो स्त्री की स्वतंत्र चेतना को उजागर करती है।

इन दोनों भक्ति परंपराओं की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह रही कि इन्होंने भक्ति को जाति, वर्ग और लिंग से ऊपर रखा। ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग सभी के लिए समान माना गया। इसी कारण भक्ति काल में स्त्री को भी आध्यात्मिक अभिव्यक्ति और आत्मानुभूति का अवसर प्राप्त हुआ। भक्ति आंदोलन ने स्त्री को केवल सामाजिक बंधनों में बँधी इकाई न मानकर आत्मिक स्वतंत्रता से युक्त साधिका के रूप में प्रतिष्ठित किया। इस प्रकार भक्ति कालीन साहित्य ने न केवल धार्मिक चेतना को नया आयाम दिया, बल्कि सामाजिक समानता और स्त्री चेतना के विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

कबीर के काव्य में स्त्री छवि

कबीर के काव्य में स्त्री छवि अत्यंत बहुआयामी, प्रतीकात्मक और दार्शनिक रूप में सामने आती है। संत कबीर निर्गुण भक्ति परंपरा के कवि हैं, इसलिए उनके काव्य में व्यक्ति, समाज और ईश्वर के संबंधों का गहन विवेचन मिलता है। वे स्त्री को केवल भौतिक आकर्षण, सामाजिक बंधन या उपभोग की वस्तु के रूप में नहीं देखते, बल्कि उसे आत्मिक चेतना, साधना और आध्यात्मिक अनुभव का सशक्त प्रतीक बनाते हैं। कबीर का उद्देश्य स्त्री या पुरुष का भेद करना नहीं, बल्कि मानव की आंतरिक दुर्बलताओं, आसक्तियों और अज्ञान पर प्रहार करना है।

कबीर के काव्य में कई स्थानों पर 'नारी' को 'माया' का प्रतीक कहा गया है, किंतु यह दृष्टि स्त्री-विरोधी नहीं मानी जा सकती। यहाँ 'नारी' शब्द से उनका तात्पर्य स्त्री जाति से नहीं, बल्कि उस सांसारिक आकर्षण और मोह से है जो मनुष्य को सत्य से दूर

करता है। कबीर की यह आलोचना वस्तुतः मानव मन की कमजोरी पर केंद्रित है, न कि स्त्री के अस्तित्व पर। वे स्पष्ट करते हैं कि माया पुरुष और स्त्री दोनों को समान रूप से बाँधती है। इस प्रकार कबीर की दृष्टि लैंगिक भेद से ऊपर उठकर आध्यात्मिक चेतना पर केंद्रित दिखाई देती है।

कबीर के काव्य में स्त्री से जुड़े अनेक प्रतीकात्मक रूपक मिलते हैं, जैसे 'दुलहिन', 'सुहागिन', 'बहू' और 'नारी'। इन प्रतीकों के माध्यम से वे जीवात्मा और परमात्मा के संबंध को अभिव्यक्त करते हैं। 'सुहागिन' वह स्त्री है जो अपने पति के प्रति पूर्णतः समर्पित होती है; इसी प्रकार कबीर की दृष्टि में सच्ची 'सुहागिन' वही जीवात्मा है जो ईश्वर से तादात्म्य स्थापित कर लेती है। उनके काव्य में सुहाग का अर्थ सांसारिक विवाह न होकर आध्यात्मिक मिलन है। इस प्रतीकात्मक प्रस्तुति में स्त्री छवि साधक की आध्यात्मिक यात्रा का माध्यम बन जाती है। इसके अतिरिक्त, कबीर सामाजिक यथार्थ पर भी तीखा प्रहार करते हैं। वे पुरुष प्रधान समाज में व्याप्त दोहरे मानदंडों, नैतिक पाखंड और स्त्री शोषण की अप्रत्यक्ष किंतु प्रभावी आलोचना करते हैं। कबीर का विरोध उस सामाजिक व्यवस्था से है जो स्त्री को दुर्बल, परनिर्भर और हीन मानती है, जबकि स्वयं पुरुष अपनी कमजोरियों को छिपाने का प्रयास करता है। उनके काव्य में स्त्री को कमजोर या अबला के रूप में नहीं, बल्कि चेतन, जागरूक और आत्मिक रूप से सक्षम इकाई के रूप में देखा जा सकता है।

इस प्रकार कबीर के काव्य में स्त्री छवि केवल सामाजिक यथार्थ तक सीमित न होकर आध्यात्मिक साधना, आत्मबोध और मानवीय चेतना का व्यापक प्रतीक बन जाती है। उनकी स्त्री संबंधी दृष्टि भक्ति कालीन समाज में व्याप्त रूढ़ियों को तोड़ते हुए मानव मात्र की समान आत्मिक सत्ता को प्रतिष्ठित करती है।

मीरा के काव्य में स्त्री छवि

मीरा बाई का काव्य भक्ति कालीन साहित्य में स्त्री आत्म-अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त, प्रामाणिक और जीवंत उदाहरण प्रस्तुत करता है। मीरा स्वयं एक स्त्री होने के कारण अपने जीवन के अनुभवों, मानसिक द्वंद्व, सामाजिक दबाव, प्रेम, पीड़ा और विद्रोह को प्रत्यक्ष रूप से काव्य में ढालती हैं। उनका काव्य किसी दार्शनिक कल्पना का परिणाम नहीं, बल्कि आत्मानुभूति और व्यक्तिगत संघर्ष की सच्ची अभिव्यक्ति है। इसी कारण मीरा के पदों में स्त्री की आंतरिक संवेदना और आत्मचेतना अत्यंत प्रभावशाली रूप में उभरकर सामने आती है।

मीरा के लिए श्रीकृष्ण केवल आराध्य देव नहीं हैं, बल्कि वे पति, प्रियतम और जीवन के सर्वस्व हैं। यह संबंध सांसारिक विवाह की परिधि से परे आध्यात्मिक प्रेम पर आधारित है। मीरा स्वयं को कृष्ण की दासी, प्रेयसी और पत्नी के रूप में स्वीकार करती हैं। इस भाव में स्त्री अपनी पहचान किसी सामाजिक संबंध से नहीं, बल्कि अपनी भक्ति और प्रेम के माध्यम से निर्मित करती है। मीरा की स्त्री छवि इस दृष्टि से अत्यंत क्रांतिकारी है, क्योंकि वह पितृसत्तात्मक समाज द्वारा निर्धारित स्त्री भूमिकाओं को अस्वीकार कर स्वयं के लिए स्वतंत्र आध्यात्मिक मार्ग चुनती है। मीरा के काव्य में सामाजिक बंधनों के प्रति विद्रोह स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। राजघराने से संबंध रखने के बावजूद वे पारिवारिक मर्यादाओं, लोकलाज और सामाजिक प्रतिष्ठा को त्यागकर भक्ति के मार्ग पर अग्रसर होती हैं। समाज, परिवार और राजसत्ता द्वारा किए गए विरोध, तिरस्कार और उत्पीड़न के बावजूद मीरा अपने विश्वास से विचलित नहीं होतीं। उनका यह साहस स्त्री की आत्मनिर्भरता, आत्मसम्मान और दृढ़ संकल्प को रेखांकित करता है। मीरा के पदों में स्त्री की भावनात्मक गहराई, प्रेम की तीव्रता और आत्मसमर्पण की भावना अत्यंत मार्मिक रूप में अभिव्यक्त हुई है। उनके काव्य में विरह, मिलन, प्रतीक्षा और पीड़ा जैसे भाव स्त्री के आंतरिक संसार को उजागर करते हैं। किंतु यह पीड़ा कमजोरी का प्रतीक

नहीं, बल्कि भक्ति की तीव्रता और प्रेम की प्रामाणिकता का प्रमाण है। मीरा की स्त्री छवि प्रेम और समर्पण के साथ-साथ प्रतिरोध और आत्मसम्मान की भी प्रतीक बन जाती है।

इस प्रकार मीरा के काव्य में स्त्री छवि प्रेम, भक्ति, आत्मसमर्पण और विद्रोह का समन्वित रूप है। यह छवि मध्यकालीन समाज में स्त्री की पारंपरिक सीमाओं को तोड़ते हुए उसकी स्वतंत्र चेतना, आध्यात्मिक अधिकार और आत्मिक गरिमा को स्थापित करती है। मीरा का काव्य भक्ति काल में स्त्री चेतना के उत्कर्ष का प्रतिनिधि दस्तावेज माना जा सकता है।

कबीर और मीरा की स्त्री छवि का तुलनात्मक अध्ययन

कबीर और मीरा दोनों भक्ति काल के ऐसे प्रमुख रचनाकार हैं जिनके काव्य में स्त्री छवि भक्ति की केंद्रीय धुरी के रूप में उभरकर सामने आती है, किंतु दोनों की वैचारिक पृष्ठभूमि, भक्ति परंपरा और अभिव्यक्ति की शैली के कारण उनकी दृष्टि में स्पष्ट भिन्नता दिखाई देती है। यह भिन्नता केवल काव्य-शिल्प की नहीं, बल्कि अनुभव, दर्शन और सामाजिक दृष्टिकोण की भी है।

कबीर के काव्य में स्त्री छवि मुख्यतः प्रतीकात्मक और दार्शनिक रूप में प्रस्तुत होती है। वे स्त्री को व्यक्तिगत अस्तित्व के रूप में कम और आध्यात्मिक बोध के माध्यम के रूप में अधिक ग्रहण करते हैं। 'सुहागिन', 'दुलहिन' और 'बहू' जैसे स्त्री-प्रतीकों के माध्यम से कबीर जीवात्मा और परमात्मा के संबंध को स्पष्ट करते हैं। उनके यहाँ स्त्री छवि सामाजिक आलोचना और आध्यात्मिक संदेश का साधन बन जाती है। कबीर का उद्देश्य समाज में व्याप्त पाखंड, मोह और अज्ञान पर प्रहार करना है, इसलिए उनकी स्त्री-दृष्टि वैयक्तिक अनुभूति की अपेक्षा दार्शनिक विवेचन पर अधिक केंद्रित है।

इसके विपरीत मीरा के काव्य में स्त्री छवि पूर्णतः जीवंत, अनुभूत और आत्मकथात्मक रूप में सामने आती है। मीरा स्वयं स्त्री होने के कारण अपनी भक्ति, प्रेम, पीड़ा और संघर्ष को प्रत्यक्ष रूप से अभिव्यक्त करती हैं। उनके काव्य में स्त्री कोई प्रतीक मात्र नहीं, बल्कि स्वयं अनुभव करती हुई, निर्णय लेती हुई और संघर्ष करती हुई चेतन सत्ता है। मीरा के यहाँ स्त्री स्वयं संदेश है—उसका प्रेम, उसका समर्पण और उसका विद्रोह ही भक्ति का स्वरूप बन जाता है।

भक्ति परंपरा के स्तर पर भी दोनों की दृष्टि में अंतर स्पष्ट है। कबीर निर्गुण भक्ति के माध्यम से ईश्वर को निराकार मानते हुए स्त्री और पुरुष के बीच पूर्ण आध्यात्मिक समानता पर बल देते हैं। उनकी दृष्टि में आत्मा का कोई लिंग नहीं होता, इसलिए मोक्ष और भक्ति का अधिकार सभी को समान रूप से प्राप्त है। वहीं मीरा सगुण भक्ति के माध्यम से ईश्वर के साकार रूप श्रीकृष्ण से भावनात्मक और व्यक्तिगत संबंध स्थापित करती हैं। यह संबंध स्त्री की व्यक्तिगत स्वतंत्रता, प्रेम और आत्मनिर्णय को प्रतिष्ठित करता है।

सामाजिक दृष्टि से भी दोनों कवियों का योगदान महत्वपूर्ण है। कबीर सामाजिक रूढ़ियों और दोहरे मानदंडों की आलोचना करते हुए स्त्री को चेतन और सक्षम इकाई के रूप में स्वीकार करते हैं, जबकि मीरा स्वयं उन रूढ़ियों को तोड़कर अपने जीवन से प्रतिरोध का उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। कबीर का स्वर सुधारक और आलोचक का है, तो मीरा का स्वर संघर्षशील साधिका और विद्रोही स्त्री का।

इस प्रकार कबीर और मीरा दोनों के काव्य में स्त्री छवि भिन्न रूपों में अभिव्यक्त होते हुए भी एक साझा उद्देश्य की पूर्ति करती है—मानव मात्र की आत्मिक मुक्ति और सामाजिक समानता। दोनों ही कवियों के काव्य में स्त्री छवि मध्यकालीन रूढ़ियों को तोड़ती है और भक्ति को प्रेम, स्वतंत्रता और समानता के सार्वभौमिक मार्ग के रूप में स्थापित करती है।

निष्कर्ष

भक्ति कालीन काव्य में स्त्री छवि का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि यह साहित्य केवल धार्मिक भावना या आध्यात्मिक अनुभूति तक सीमित नहीं था, बल्कि वह अपने समय के सामाजिक ढांचे में परिवर्तन लाने वाला एक सशक्त वैचारिक आंदोलन भी था।

भक्ति आंदोलन ने ईश्वर-भक्ति को कर्मकांड और बाह्य आडंबर से मुक्त करते हुए उसे मानव-मूल्यों, समानता और आत्मिक स्वतंत्रता से जोड़ा। इसी प्रक्रिया में स्त्री को भी पहली बार व्यापक रूप से आध्यात्मिक समानता और आत्म-अभिव्यक्ति का अधिकार प्राप्त हुआ।

कबीर और मीरा दोनों ने अपने-अपने काव्य के माध्यम से स्त्री की गरिमा, चेतना और अधिकार को नए सिरे से परिभाषित किया। कबीर की स्त्री छवि दार्शनिक और प्रतीकात्मक होते हुए भी सामाजिक यथार्थ से गहराई से जुड़ी हुई है। वे स्त्री को आत्मा, साधना और चेतना के रूपक के रूप में प्रस्तुत करते हैं तथा समाज में व्याप्त पाखंड, मोह और दोहरे मानदंडों की आलोचना करते हैं। कबीर का दृष्टिकोण यह स्थापित करता है कि आत्मा का कोई लिंग नहीं होता और मोक्ष तथा भक्ति का मार्ग स्त्री-पुरुष दोनों के लिए समान है। दूसरी ओर, मीरा की स्त्री छवि आत्मानुभूति, प्रेम, पीड़ा और विद्रोह की जीवंत अभिव्यक्ति है। मीरा स्वयं अपने जीवन और काव्य के माध्यम से यह सिद्ध करती हैं कि स्त्री सामाजिक बंधनों, पारिवारिक दबावों और लोकलाज से ऊपर उठकर अपनी आध्यात्मिक पहचान स्वयं निर्मित कर सकती है। उनका काव्य स्त्री की भावनात्मक गहराई, आत्मसम्मान और स्वतंत्र निर्णय क्षमता को उजागर करता है। मीरा की भक्ति व्यक्तिगत होते हुए भी सामाजिक व्यवस्था को चुनौती देने वाली है।

इस प्रकार कबीर और मीरा के काव्य में स्त्री छवि दो भिन्न रूपों में अभिव्यक्त होकर भी एक साझा लक्ष्य की ओर अग्रसर है—मानव मात्र की आत्मिक मुक्ति और सामाजिक समानता। कबीर की प्रतीकात्मक और सुधारक दृष्टि तथा मीरा की आत्मानुभूत और विद्रोही चेतना, दोनों मिलकर भक्ति काल में स्त्री की प्रतिष्ठा को सुदृढ़ करती हैं। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भक्ति कालीन काव्य में स्त्री केवल उपेक्षित या सीमित इकाई नहीं, बल्कि आध्यात्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन की सक्रिय वाहक के रूप में स्थापित होती है। यही भक्ति साहित्य की स्थायी और समकालीन प्रासंगिकता है।

संदर्भ सूची (References)

1. शुक्ल, रामचंद्र. *हिंदी साहित्य का इतिहास*. नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
2. द्विवेदी, हजारी प्रसाद. *कबीर*. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. द्विवेदी, हजारी प्रसाद. *मध्यकालीन हिंदी साहित्य*. लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
4. शर्मा, रामस्वरूप. *मीरा और उनका काव्य*. लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
5. नागेन्द्र. *भक्ति आंदोलन और हिंदी काव्य*. राष्ट्रीय हिंदी संस्थान, आगरा।
6. वर्मा, धीरेंद्र. *भक्ति कालीन साहित्य में नारी चेतना*. हिंदी अकादमी, नई दिल्ली।
7. मिश्र, शिवकुमार. *संत काव्य की सामाजिक चेतना*. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
8. तिवारी, भोलानाथ. *हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास*. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
9. सिंह, बच्चन. *हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास*. राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
10. पांडेय, रामविलास. *भारतीय समाज और भक्ति आंदोलन*. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
11. शास्त्री, रामचंद्र. *मीरा बाई: जीवन और काव्य*. साहित्य भवन, इलाहाबाद।
12. त्रिपाठी, विजयमोहन. *संत साहित्य: परंपरा और मूल्य*. भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।
13. सिंह, नामवर. *कविता के नए प्रतिमान*. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
14. जोशी, शिवनारायण. *भारतीय भक्ति परंपरा*. ओरिएंट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली।
15. त्रिवेदी, मदनमोहन. *हिंदी भक्ति काव्य: विचार और मूल्य*. साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।